प्रतिमुद्रण OFF-PRINT

ॐ

# दुर्लभबौद्धग्रन्थशोधपत्रिका

# Journal of Rare Buddhist Texts Research Unit

## 35

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
2003

# ग्रन्थ समीक्षा

—जनार्दन पाण्डेय—

| | | |
|---|---|---|
| **ग्रन्थ** | – | काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ |
| **लेखक** | – | डॉ० नवजीवन रस्तोगी |
| **प्रकाशक** | – | मुंशीराम मनोहरलाल प्रा० लि०, नई दिल्ली |
| **साइज** | – | डबल डिमाई, पृष्ठ 14+276, **मूल्य** – 450 रु० |
| **प्रकाशन** | – | 2002 ई० |

भारतीय दर्शन भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न भूमियों के अनुरूप एक व्यावहारिक ज्ञान है, जो केवल अनुभवगम्य है। हमारा जीवन और दर्शनशास्त्र जैसे एक ही तत्त्व के दो रूप हैं, एक व्यावहारिक है और दूसरा सैद्धान्तिक। भूमिभेद से व्यवहार में भेद होता है और उससे सिद्धान्त में। इसी भेद में अभेद देखना और उसी का अनुभव करना दर्शन का लक्ष्य है, भारतीय चिन्तन परम्परा में इसकी चरम परिणति काश्मीर शैवाद्वयवाद में है और इसी में दर्शन के पूर्ण स्वरूप का अनुभव होता है।

अभी-अभी डॉ० रस्तोगी की ''काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ'' नामक ग्रन्थ प्रकाश में आया है। इस दर्शन के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। इसमें काश्मीर शिवाद्वयवाद के मौलिक चिन्तन क्रम में अनुस्यूत आधारभूत विशिष्ट प्रत्ययों को रूपायित कर उनके उन्मीलन से इस दर्शन में एक अन्तर्दृष्टि को विकसित करने की चेष्टा की गई है। इस दर्शन में प्रत्येक पारिभाषिक शब्द के प्रयोग की अनेक भूमियाँ हैं और कुछ ऐसे मौलिक प्रत्यय हैं जिन पर इसका पूरा ढाँचा आधारित है, उन्हीं का यहाँ विवेचन किया गया है। अज्ञान, मोक्ष आदि प्रमुख धारणाओं का साक्षात् विवेचन नहीं किया है, क्योंकि उनसे प्रायः सभी परिचित हैं। केवल पूर्णता के घटकभूत केन्द्रीय प्रत्ययों—प्रकाश, विमर्श आदि तथा पूर्णता तक पहुँचने के तीन आयामों—भक्ति, योग और उपाय चतुष्टय पर ही विचार किया गया है। इस ग्रन्थ में चौदह अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय है—**आधारपीठिका**। इसमें ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करते हुए काश्मीर शिवाद्वयवादी तन्त्रों व ग्रन्थों में विकसित प्रत्ययों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है तथा इस दर्शन के अवान्तर सम्प्रदायों की परिभाषा के साथ विस्तृत विवरण दिया

है। जैसे **त्रिक**—द्वैत, द्वैताद्वैत तथा अद्वैत इन तीनों का सार जिसमें निहित है वह त्रिक कहलाता है और इसी में परा, परापरा और अपरा इन तीन देवियों की कल्पना की जाती है। **क्रम**—इस संप्रदाय में सारी व्याख्याएँ क्रम की धारणा को केन्द्र में रखकर की जाती हैं। जैसे—क्रमनय, औत्तरक्रम महार्थक्रम आदि। **कुल**—इसमें सामरस्य भाव की चेतना प्रधान है। सब कुछ एक ही कुल का अंग है, इस दृष्टि से अद्वैत की स्थापना की गई है। **स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा**—तान्त्रिक शिवाद्वयवाद के दार्शनिकीकरण की प्रक्रिया में इन दोनों को त्रिक के अन्तर्गत माना जाता है। इन दोनों को अध्याय 4 और 11 में स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय के अन्त में इस दर्शन की ज्ञानमीमांसा और तत्त्वमीमांसा वर्णित है।

दूसरे अध्याय में **प्रकाश** का विवेचन है। यद्यपि इस दर्शन को प्रकाशविमर्शात्मक माना जाता है, किन्तु फिर भी तार्किक विश्लेषणात्मक दृष्टि से इस अवधारणा की प्रकाश और विमर्श इन दो रूपों में कल्पना की जाती है। प्रकाश यहाँ सत् और ज्ञान दोनों का पर्याय है, इसलिए परमसत् और परप्रमाता के रूप में प्रतिपादित करने से सत्ता और ज्ञान की अभिन्नता का उद्घोषक है। इस दर्शन की तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा जहाँ इस प्रकाशतत्त्व के स्वरूपानुसन्धान में संलग्न प्रतीत होती है वहीं मोक्षमीमांसा भी इसी के प्रत्यभिज्ञान में परिनिष्ठित होती है। इसीलिए मूल अवधारणाओं में प्रथम प्रकाश का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में मिलता है।

तीसरे अध्याय का विषय है—**विमर्श**। विमर्श का अर्थ है विचार करने की सामर्थ्य, इस दर्शन में भी विमर्श को संवेदन सामर्थ्य के अर्थ में ही लिया गया है। यहाँ प्रश्न होता है किसके संवेदन की सामर्थ्य? तो उत्तर है—पूर्व वर्णित प्रकाशांशरूप परमसत्ता के संवेदन का। इसीलिए इस दर्शन को प्रकाशविमर्शात्मक कहा जाता है। इसी विमर्श का विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

चौथे अध्याय का विषय है—**स्पन्द**। स्पन्द का सिद्धान्त काश्मीर शैवाद्वयवाद में विशेष महत्त्व रखता है। यह सम्प्रदाय विशेष की संज्ञा भी है और उसके सारभूत प्रत्यय 'गति' की विशिष्ट प्रस्तुति भी, जो इस सम्प्रदाय की मौलिक उद्भावना है। दार्शनिक सन्दर्भ में इसका अर्थ है अत्यन्त सूक्ष्म गति। उस परमतत्त्व की यह स्पन्द क्रिया उसे नाना रूपों में आभासित करती हुई भी तात्त्विक रूप से कहीं च्युत नहीं होने देती। उस अद्वय तत्त्व में नानात्व के संयोजन का प्रयास ही स्पन्द नामक वैशिष्ट्य को उसका अनिवार्य स्वभाव बना

देता है। इस स्पन्द सिद्धान्त की उत्पत्ति तथा विविधता का सम्यग्विववेचन इस अध्याय में है।

अध्याय पाँच का विषय है—**वाक्**। यह वाक् शैवाद्वयवाद के 'सत्' का स्वरूपाधायक तत्त्व है। यहाँ समष्टि और व्यष्टि का प्रत्येक कण इस वाक् तत्त्व से अनुप्राणित है। अद्वैततत्त्व का नानात्व के रूप में विमर्शन वृत्ति से जो विस्तार होता है और जो प्रत्यावर्तन होता है, वही वाक् तत्त्व है, विमर्श विचार का चेतना रूप है और वाक् उसका स्फुटीकरण है। इसका और परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी रूप इसके भेदों का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में दिया है।

अध्याय छः का विषय है—**स्वातन्त्र्य**। यह इस दर्शन का आधारभूत प्रत्यय है, जो इसके पूर्णतावादी ढाँचे को प्रमुख रूप से प्रस्तुत करता है। यद्यपि आगमिक विचारधारा के सभी सम्प्रदाय सत् की स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हैं, परन्तु द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैतादि प्रवृत्तियों के कारण वह विभक्त हो जाता है। काश्मीर शैवाद्वयवाद में यह स्वातन्त्र्य ऐसे रूप में देखा जाता है, जिससे इस सम्प्रदाय को ही स्वातन्त्र्यवाद कहा जाता है। इस अध्याय में यह स्पष्ट किया है कि जहाँ यह स्वातन्त्र्य आनन्द, क्रीड़ा, पंचकृत्यकारित्व, नियमन, संबन्ध कारणता आदि विविध धारणाओं का स्रोत है वहीं उस पूर्णतत्त्व के विस्तार और संकोच का निमित्त भी है। मोक्ष के सन्दर्भ में भी यह स्वातन्त्र्य वेदान्त की तरह सब कुछ मायिक मानकर उसे त्यागने में नहीं प्रत्युत स्वात्मविभवरूप में सब कुछ स्वीकार करने के रूप में मानता है।

अध्याय सात का विषय है—**शक्ति**। शक्ति इस दर्शन का अवधारणाओं में प्रमुख है शिव की समस्त गति या क्रिया का संबन्ध इसी से जुड़ा है। शिव में स्थित इकार शक्ति का ही प्रतीक है, उसके बिना शिव शव हो जाता है अर्थात् शक्ति तत्त्व ही सारी सामर्थ्यों का प्रतिनिधि है और शिव की चेतनता इसी से संभव है। इसीलिए शिव को सर्वदा शक्ति से अव्यतिरिक्त माना जाता है। यद्यपि तान्त्रिक जगत् में शैव और शाक्त परम्पराएँ पृथक् दीखती हैं, शैव शिव को और शाक्त शक्ति को प्रधान तत्त्व मानते हैं, किन्तु काश्मीर शैवाद्वयवाद में शिव की सर्वशिवता को माना जाता है। इनका सिद्धान्त है शिव ही अपनी शक्तियों से जागतिक जीवों के रूप में प्रकट होकर नाना प्रकार के व्यापार करता है। इसकी ये शक्तियाँ हैं—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। शक्ति का जो विवेचन इस

अध्याय में किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति इस दर्शन की तत्त्वमीमांसा का स्वरूपनिर्धारक आधारबिन्दु है।

अध्याय आठ का विषय है—**पूर्णता**। भारतीय अध्यात्मवाद में प्रारम्भ से ही सर्वोच्च सत् तत्त्व की मान्यता रही है "पूर्णमदः पूर्णमिदं..." इत्यादि वाक्य इसके प्रमाण हैं। पूर्ण शब्द का वाच्य अर्थ है भरा हुआ अर्थात् पूरी तरह से व्याप्त। दार्शनिकों ने इसका प्रयोग व्याप्त, नित्य, सामर्थ्यवान्, आकांक्षारहित, एकरसात्मक या समरसात्मक, आनन्दमय और अद्वय इन अर्थों में किया है। प्रस्तुत अध्याय में किस दार्शनिक ने किस अर्थ में इसका प्रयोग किया है, यह बताते हुए स्पष्ट किया है कि काश्मीर शैवाद्वयवाद में समरसात्मकता को ही पूर्णता का स्वरूपाधायक माना है।

अध्याय नौ का विषय है—**सम्बन्ध**। आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है 'सम्बन्धाधीनैवेयं चित्रा लोकयात्रा' यह सम्पूर्ण लोकव्यवहार सम्बन्धों पर ही तो चलता है। प्रत्येक दर्शन सम्प्रदाय मूलतः दो प्रकार से सम्बन्ध का अध्ययन करता है—1. मूलसत्ता से जगत् का सम्बन्ध, 2. जागतिक पदार्थों का पारस्परिक सम्बन्ध। यह सम्बन्ध क्या है—द्रव्य, गुण, जाति या एक सामान्य तथ्य? इस प्रश्न के उत्तर में अन्य दार्शनिकों के पक्ष एवं उनका निराकरण करते हुए काश्मीर शैव सिद्धान्त स्थिर किया है कि परम सार के स्वातन्त्र्य का प्रथम स्फारनियमन अर्थात् तथ्यों के व्यवस्थितीकरण का एक ढंग ही सम्बन्ध है।

अध्याय दस का विषय है—**भेद**। दार्शनिक परम्पराएँ दो भागों में विभक्त हैं—व्यावहारिक और पारमार्थिक। पारमार्थिक स्तर पर जब अभेद की चर्चा करते हैं तो भेद को जानना आवश्यक होता है, क्योंकि व्यवहार से ही परमार्थ की ओर अग्रसर हुआ जाता है। भेदवादी और भेदाभेदवादी दार्शनिकों के लिए भेद की प्रतिष्ठापना आसान है, किन्तु अभेदवादियों के लिये कठिन है, क्योंकि उन्हें हर परिस्थिति में अभेद को सुरक्षित रखना होता है। इसीलिए सभी अद्वैतवादी दर्शन भेद को मिथ्या, अविद्याजन्य व्यवहार या संवृतिसत् रूप में मानकर परतत्त्व में उसकी सत्ता का निषेध करते हैं। काश्मीर शैवदर्शन पूर्णतावादी है, इसलिए माया, अविद्या, निषेध, विकल्प आदि उप-प्रत्ययों को अपने में समा लेता है और भेद को भी अभिन्न संवित् में स्वीकार कर लेता है। यही स्थिति उसे अद्वैत से भी ऊपर महाद्वैत पद पर प्रतिष्ठित करती है। इस अध्याय में भेद का स्वरूप, 6 प्रकार के दर्शनों की गणना, जो भेद-अभेद को सत्, असत्, दोनों या दोनों से भिन्न या एक को आभासन रूप मानते हैं, की गई है और भेद का प्रकाशन और आभासन के स्तर का

विवेचन किया गया है, क्योंकि भेद इस दर्शन की एक मूलभूत समस्या है, जिसका सम्बन्ध मोक्ष और बन्धन से है। भेद का परिज्ञान ही परम पुरुषार्थ की प्राप्ति में और निषेध बन्धन प्राप्ति में समर्थ है।

अध्याय ग्यारह का विषय है—**प्रत्यभिज्ञा**। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है अवबोधन या पहचान। भारतीय दार्शनिक चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य रहा है प्रमाता के स्वरूप का अवबोधन। प्रायः सभी दर्शन किसी न किसी रूप में इसे स्वीकार करते हैं, किन्तु काश्मीर शैव दर्शन सम्पूर्ण रूप से इसी के रंग में रंगा है, इसीलिये इसे प्रत्यभिज्ञा दर्शन रूप से ही अधिक जाना जाता है। विद्वान् लेखक ने इस अध्याय में प्रत्यभिज्ञा शब्द की व्युत्पत्ति, प्रत्येक भारतीय दर्शन में उसका स्वरूप निरूपण और काश्मीर शैव में उसकी स्थिति का व्यापक रूप से विवेचन किया है। ज्ञानात्मक, क्रियात्मक, वाच्य-वाचकात्मक और आभासनात्मक प्रक्रियाओं के अतिरिक्त रसानुभूति की प्रक्रिया भी प्रत्यभिज्ञा पर अवलम्बित रहती है। प्रमाणमीमांसा की दृष्टि से तथा तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से इसके भेद दर्शाये हैं। इसे एक समन्वयवादी प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है, जिसमें सब कुछ समाविष्ट है। काश्मीर शैवदर्शन का सर्वाधिक व्यापक व जटिल सिद्धान्त है प्रत्यभिज्ञा। क्षेत्र चाहे ज्ञान का हो, परमार्थ का हो या साधना का हो, आदि और अन्त प्रत्यभिज्ञा ही है।

अध्याय बारह का विषय है—**भक्ति**। काश्मीर शैवाद्वयवाद में ज्ञान, योग और भक्ति का अनूठा संगम है। मानव व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं—ज्ञान, योग और भावना। मानव ज्ञानपक्ष की प्रबलता से दर्शन की ओर, क्रियापक्ष की प्रबलता से योग की ओर तथा भावनापक्ष की प्रबलता से भक्ति की ओर प्रवृत्त होता है। तीनों का साध्य एक ही है, जो काश्मीर शैवाद्वैत में पर्यवसित होता है। इस अध्याय में विभिन्न संप्रदायों में स्वीकृत भक्ति की परिभाषा और उसका स्वरूप दर्शाते हुए इस दर्शन में उसका वैशिष्ट्य वर्णित है। इस संप्रदाय में परमेश्वर की कल्पना एक पूर्णतत्त्व के रूप में की गई है जिसमें सारे भेद अंशरूप से समाहृत हैं। चूँकि भक्ति की अवधारणा में भेद भी आवश्यक है और ऐक्य भी। अतः यहाँ ऐक्य तो वास्तविक है और भेद आभासज्ञान। शिवाद्वयवाद के सभी आचार्यों ने स्तुतिपरक उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं और उनमें स्वीकृत दार्शनिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में भक्ति की धारणा को विकसित किया है।

अध्याय तेरह का विषय है—**योग**। विभिन्न संप्रदायों द्वारा स्वीकृत योग की परिभाषाओं का इस अध्याय में सम्यग्विवेचन है। शैवाद्वयवाद के विभिन्न आचार्यों ने कई

रूप में इसे माना है। सामान्यत: योग का अभिप्राय है समाधि। इसे ये भी स्वीकार करते हैं, अत: पतञ्जलि का अष्टाङ्ग योग इन्हें भी मान्य है, किन्तु उसकी परिभाषा इनकी अपनी है। जैसे यम=संसार से नित्य विरति। नियम=परतत्त्व की नित्यभावना। आसन=प्राण का आश्रय लेकर ज्ञानशक्ति के सहारे स्थित रहना। प्राणायाम=सूक्ष्मातीत प्राणात्मिका चित् के स्पन्दन की अनुभूति। प्रत्याहार=चित्त द्वारा अपनी वृत्तियों को छोड़कर परमधाम में प्रवेश। ध्यान=बुद्धि के गुणों से परे निर्ध्येय परमतत्त्व का ध्यान। धारणा=जिसके द्वारा परमत्त्व को धारण किया जाय। समाधि=जड़-चेतन में शाश्वत विद्यमान चित् तत्त्व का अपनी वृत्ति में स्फुरण। तात्पर्य यह है कि पातञ्जलयोग क्रिया प्रधान है और इनका ज्ञानप्रधान। कुछ विद्वान् यम और नियम को इसमें न गिनकर षडङ्ग योग भी मानते हैं।

अध्याय चौदह का विषय है—**उपाय चतुष्टय**। इस शैवाद्वयवाद में प्रकाशस्वातन्त्र्य ही मुख्य है। यही संवित्, महासंवित् या परमज्ञान है। इसे प्राप्त करने के जो साधन हैं वे उपाय कहे जाते हैं। ये चार हैं—आणवोपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय तथा अनुपाय। भेद से अभेद की ओर जाना ही इन उपायों का लक्ष्य है, परन्तु भेद के भी स्तर हैं। अणु (देह) के स्तर पर संवित् में प्रवेश कराने वाला आणवोपाय है। चेतना के स्तर पर प्रवेश कराने वाला शाम्भवोपाय है, चित्त के स्तर पर प्रवेश कराने वाला शाक्तोपाय है और अनुपाय वह है जिसमें किञ्चित् संकेतमात्र से शिवैकात्म्यानुभूति हो जाती है, जैसे सिद्धों के आशीर्वाद, गुरु की कृपा (शक्तिपात) आदि से सहसा शिवैकात्म्यानुभूति परम शिव की इच्छा से हो जाती है। इसे अल्पोपाय भी कहते हैं। इन्हीं का विवेचन इस अध्याय में किया है।

इस ग्रन्थ के लेखक डॉ० रस्तोगी लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत-पालि विभाग के अध्यक्ष तथा "अभिनवगुप्त संस्थान स्वतंत्र कलाशास्त्रीय एवं शैवदार्शनिक" के मानद अध्यक्ष रहे हैं। काश्मीर शैवदर्शन व अभिनवगुप्त के चिन्तन में इनके 'द क्रम तान्त्रिसिज्म ऑफ कश्मीर-भाग 1', 'इण्ट्रोडक्शन टू द तन्त्रालोक : ए स्टडी इन स्ट्रक्चर' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जयरथ की टीका सहित तन्त्रालोक जैसे विशाल ग्रन्थ का सम्पादन इन्होंने किया है। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन फिलोसॉफी के काश्मीर शैव खण्ड के सम्पादक हैं। ऐसे आधिकारिक विद्वान् की यह कृति कश्मीर शैव दर्शन के जिज्ञासुओं के लिये प्रामाणिक रूप से उपयोगी होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। ग्रन्थ की छपाई-सफाई उत्तम है।

•